भाषा मर्यादित हो

मतदाताओं की तादाद और चुनावी खर्च के लिहाज से लोकसभा के निर्वाचन की प्रक्रिया दुनिया में सबसे बड़ी जरूर है, पर हम क्या यह दावा भी कर सकते हैं कि लोकतांत्रिक मूल्यों के पालन में भी हम पहले पायदान पर हैं? जिस तरह से आदर्श आचार संहिता के नियमों के उल्लंघन और चुनाव अधिकारियों के निर्देशों की अवहेलना की खबरें आ रही हैं, वे बहुत चिंताजनक हैं. जाति या धर्म से जुड़ी भावनाओं को भड़का कर वोट लेने की कवायद की संहिता में साफ मनाही है. प्रत्याशियों के बीच आरोप-प्रत्यारोप को दावों, वादों, नीतियों और कार्यक्रमों तक सीमित रखने का निर्देश है. लेकिन, जातिगत और धार्मिक पहचानों के आधार पर खुलेआम वोट मांगने तथा आलोचना की जगह अभद्र और अपमानजनक भाषा का प्रयोग करने के कई मामले सामने आ रहे हैं. लग रहा है कि पार्टियों के बीच में न सिर्फ आचार संहिता तोड़ने, बल्कि सार्वजनिक जीवन में मर्यादा की हर सीमा को लांघने की होड़ है. ऐसी हरकतों में कमोबेश सभी पार्टियां शामिल हैं और इनकी अगुआई उनके वरिष्ठ नेता कर रहे हैं. स्थिति किस हद तक बिगड़ चुकी है, इसका अंदाजा इसी से लगाया जा सकता है कि निर्वाचन आयोग को एक राष्ट्रीय पार्टी की प्रमुख और बड़े प्रांत के मुख्यमंत्री को कुछ दिनों के लिए प्रचार करने से प्रतिबंधित करना पड़ा है. आयोग ने कहा है कि इनके भड़काऊ बयानों से विभिन्न समुदायों के बीच खाई और घृणा बढ़ सकती है. एक पूर्व मंत्री पर महिला प्रतिद्वंद्वी के विरुद्ध बेहद अपमानजनक टिप्पणी के लिए मुकदमा दायर किया गया है. ऐसे दर्जनों उदाहरण हैं, जो आयोग के सामने लंबित हैं. चुनाव प्रचार का उद्देश्य है कि मतदाताओं को पार्टियां और उम्मीदवार अपने एजेंडे की खूबियों और विरोधियों के एजेंडे की खामियों से अवगत करायें, ताकि लोग बेहतर प्रतिनिधि और सरकार चुन सकें, परंतु यदि प्रचार व्यक्तिगत लांछन और अमर्यादित बयानों पर आधारित होगा, तो जनता के सामने राजनीतिक और वैचारिक पक्षों को कैसे रखा जा सकता है? क्या ऐसे नेताओं से देशहित में काम करने की अपेक्षा की जा सकती है? आयोग को ऐसी प्रवृत्तियों के विरुद्ध कठोर कार्रवाई करनी चाहिए, लेकिन मर्यादित भाषा और व्यावहारिक शुचिता की परवाह नहीं करनेवाले नेताओं के साथ मीडिया और मतदाताओं को भी निष्ठुर होना होगा. हमें यह सवाल खुद से और राजनीतिक पार्टियों से पूछना होगा कि क्या ऐसे जनप्रतिनिधि देश की सबसे बड़ी पंचायत में भारत के भविष्य को लेकर गंभीर होंगे, जिन्हें बुनियादी लोकतांत्रिक मूल्यों से भी परहेज हो. चुनावी जीत के लिए समाज को बांटने और विरोधी पर कीचड़ उछालने का यह तरीका बर्दाश्त नहीं किया जाना चाहिए. सत्तर वर्षों की अपनी यात्रा में भारतीय गणतंत्र उत्तरोत्तर मजबूत हुआ है, लेकिन धनबल और बाहुबल से राजनीति को मुक्त कराने का कार्य अभी अधूरा है. ऐसे में आदर्शों और मूल्यों को बचाने का महत्वपूर्ण उत्तरदायित्व हमारे सामने है.

यदि प्रचार व्यक्तिगत लांछन और अमर्यादित बयानों पर आधारित होगा, तो जनता के सामने राजनीतिक और वैचारिक पक्षों को कैसे रखा जा सकता है?

शैक्षिक योग्यता और कामकाज

एक नेता को कितना शिक्षित होना चाहिए और उसमें बौद्धिक सुसंगति के अभाव के क्या नतीजे हो सकते हैं? कांग्रेस मजाक उड़ा रही है कि स्मृति ईरानी ने कभी किसी कॉलेज में दाखिला नहीं लिया. उन्होंने एक पत्राचार पाठ्यक्रम में अपना नामांकन तो कराया था, पर वे उसे पूरा न कर सकीं.

स्मृति ईरानी एक बुद्धिमान तथा चतुर महिला हैं और औपचारिक शिक्षा का अभाव उनकी प्रगति की राह का रोड़ा नहीं बन सका. अलबत्ता यह अपनी जगह सही है कि उनके गुणों की परख केवल उनके नीतिगत कदमों को लेकर की जा सकती है, जिसके विषय में हममें से अधिकतर को कोई जानकारी नहीं है. कॉलेज नहीं जाने में कोई शर्म की बात नहीं है, मगर ईरानी की मुश्किलें इसलिए पैदा हुईं कि उन्होंने अपनी शिक्षा से संबद्ध कुछ ऐसे दावे कर डाले, जो यदि सिरे से गलत नहीं, तो भ्रामक जरूर थे. यह कहा जाना चाहिए कि खुद कांग्रेस पार्टी की वंशावली भी शैक्षिक दृष्टि से कोई खास सुयोग्य नहीं है. राजीव गांधी पढ़ाई के लिए कैम्ब्रिज तो गये, पर वे अपनी परीक्षा में विफल रहे और उन्हें कोई डिग्री नहीं मिल सकी. उनके भाई संजय गांधी तो हाई स्कूल भी नहीं पास कर सके. उन्होंने मोटर गाड़ियों की मरम्मत का एक कोर्स करने के लिए स्कूली शिक्षा छोड़ दी. यह अचरज की ही बात है कि एक ऐसा व्यक्ति भी इतना शक्तिशाली था और उनकी मां ने उन्हें नीतिगत मामलों में इतने अधिक दखल की छूट दे रखी थी.

संजय गांधी की मेनका से शादी तब हुई, जब वे 18 वर्ष की थीं और इसलिए उन्हें भी उचित शिक्षा नहीं मिल सकी. लोकसभा के रिकॉर्ड में सिर्फ इतना दर्ज है कि वे स्कूल गयीं. सोनिया गांधी भी कॉलेज नहीं जा सकीं. उनकी शिक्षा 18 वर्ष की उम्र में समाप्त हो गयी और उन्होंने भी शीघ्र ही शादी कर ली. इंदिरा गांधी के पास भी कोई डिग्री नहीं थी.

राहुल गांधी के आलोचक उन्हें पप्पू कहते हैं, पर शैक्षिक रूप से वे अधिक आगे नजर आते हैं. उन्हें ट्रिनिटी कॉलेज, कैम्ब्रिज से विकासात्मक अर्थशास्त्र में एमफिल की डिग्री हासिल है. यह वही जगह है, जहां पर नेहरू ने भी शिक्षा ग्रहण की थी. पाठकों को यह तथ्य दिलचस्प लग सकता है कि नेहरू कोई अच्छे छात्र न रहे और वे तृतीय श्रेणी में ही उत्तीर्ण हो सके थे. गांधी परिवार के इतिहास में राहुल गांधी सर्वाधिक शिक्षित व्यक्ति हैं.

ब्रिटिश प्रधानमंत्रियों में सर्वाधिक विख्यात विंस्टन चर्चिल भी कॉलेज नहीं जा सके थे और उन्हें कोई औपचारिक शिक्षा भी नहीं मिली थी. यह तथ्य इसलिए भी काबिलेगौर है कि वे एक इतिहासकार एवं उपन्यासकार थे और उन्हें वर्ष 1953 में साहित्य का नोबेल पुरस्कार मिला था. एक अन्य ब्रिटिश प्रधानमंत्री जॉन मेजर थे, जिन्होंने 16 वर्ष की उम्र में स्कूल छोड़ दिया और कॉलेज नहीं गये. ब्रिटिश प्रधानमंत्रियों में कुल 11 व्यक्ति ऐसे थे, जिन्होंने कॉलेज की शिक्षा हासिल नहीं की थी.

प्रधानमंत्री नरेंद्र मोदी ने सत्रह साल की उम्र में अपना घर छोड़ दिया और इसलिए वे भी कॉलेज नहीं गये, पर औपचारिक शिक्षा के अभाव के बावजूद हम यह तो भांप ही सकते हैं कि वे एक अच्छे राजनेता हैं. फिर भी मैं यह समझता हूं कि उनमें एक अहम कमी यह है कि नीतिगत मामलों में वे मनमोहन सिंह अथवा ओबामा या फिर किसी अन्य बौद्धिक व्यक्ति की तरह गहराई तक नहीं जाते.

आकार पटेल
कार्यकारी निदेशक,
एमनेस्टी इंटरनेशनल इंडिया
aakar.patel@gmail.com

यह उम्मीद की जानी चाहिए कि अपने द्वितीय कार्यकाल में मोदी गंभीर तथ्यों को पढ़ने में ज्यादा वक्त देंगे, चाहे उन्हें उससे ऊब क्यों न हो या वह उनकी प्रकृति के विपरीत ही क्यों न हो.

अपने एक इंटरव्यू के दौरान नरेंद्र मोदी ने स्वयं ही यह बताया है कि वे किस तरह काम करते हैं. वे कहते हैं- 'जब मैं गुजरात का मुख्यमंत्री बना, तो उसके तीन-चार दिनों बाद राज्य के मुख्य सचिव (सीएस) मेरे पास आये. वे अपने साथ ढेर सारी फाइलें लेकर आये थे, जिनका कुल वजन 15-20 किलो रहा होगा. मुख्य सचिव ने मुझसे कहाः यह फाइल नर्मदा की है. फिर इसी तरह तीन और फाइलें थीं, जिनके बारे में उन्होंने कहा कि ये सब गुजरात के संवेदनशील तथा अहम मामलों की फाइलें हैं. आप इन सबको पढ़ जाने का वक्त निकाल लें. आप को कभी भी इन सब पर बोलने, अपना मत व्यक्त करने और इन्हें निबटाने की जरूरत पड़ सकती है.

'मैंने इन फाइलों को तीन-चार बार ऊपर से नीचे तक देखा और उनसे कहाः आप इन्हें यहां छोड़ दें और कुछ दिनों में मुझसे मिलें.

'मैंने वे फाइलें खोलीं तक नहीं. वे जहां थीं, वहीं पड़ी रहीं. मेरे अंदर से एक आवाज आयी कि मैं किसी अकादमिक अध्ययन के द्वारा काम नहीं कर सकता. मुझसे यह नहीं होगा. यह आवाज मेरे अंतर से आयी थी. मैंने अपने साथ काम करनेवाले तीन अफसरों को कहा कि मुख्य सचिव ने मुझे ये फाइलें दी हैं. मैं इतना ज्यादा पढ़ नहीं सकूंगा. आप लोग मुझे बतायें कि इन फाइलों में क्या है. यदि मैं इन्हें पढ़ना शुरू करूंगा, तो उसका अंत नहीं होगा. फाइलें पढ़ना मेरी प्रकृति में नहीं.

'तीन-चार दिनों बाद मुख्य सचिव पुनः मेरे पास आये. मैंने उनसे कहा कि आप मुझे बतायें कि इन फाइलों में क्या अहम चीजें हैं. उन्होंने वैसा ही किया और फिर मैंने उनसे कहा, मेरे लिए इतना पर्याप्त है, आप इन्हें वापस ले जा सकते हैं.

'उसके बाद मुझे इन मुद्दों पर किसी को कुछ भी बताने की जरूरत नहीं पड़ी, और तब से 13 वर्ष बीत चुके हैं. मुझमें ऐसी क्षमता रही है कि मैं मुद्दों की तह तक पहुंच सकता हूं. अफसरों पर ऐसी चीजों का असर पड़ा. मैं बहस नहीं करता. मैं एक अच्छा श्रोता हूं. मेरे बारे में बाहर क्या कुछ कहा जाता है, उस पर मत जाइए. मैं काफी अधिक सुनता हूं. आज मैं यह कह सकता हूं कि मेरे विकास में पढ़ने की भूमिका यदि 30 प्रतिशत है, तो सुनने की भूमिका 70 प्रतिशत तक रही है. मैं जो कुछ सुनता हूं, उसका विश्लेषण किया करता हूं और उसको अपने मस्तिष्क के विभिन्न बक्से में वर्गीकृत किये देता हूं. मुझे इसमें कोई वक्त नहीं लगता और जब भी आवश्यकता होती है, मैं उसे अपने जेहन में वापस ला सकता हूं. मैं इस विशिष्ट विधा को विकसित कर सका हूं. आज भी जब मेरे अफसर मुझे कोई कागजात दिखाते हैं, तो मैं उनसे कहता हूं कि मुझे दो मिनट में यह बताइए कि इनमें क्या है. मेरे लिए 10 पृष्ठों की किसी सामग्री के लिए दो मिनट बहुत हैं. मैंने यह हुनर विकसित किया है.'

दुर्भाग्यवश, एक विशाल तथा जटिल देश को चलाने के लिए ऐसा करना उचित नहीं है. यह उम्मीद की जानी चाहिए कि अपने द्वितीय कार्यकाल में मोदी गंभीर तथ्यों को पढ़ने में ज्यादा वक्त देंगे, चाहे उन्हें उससे ऊब क्यों न हो, या वह उनकी प्रकृति के विपरीत ही क्यों न हो.

असल मुद्दा तो अछूता ही है

आरके सिन्हा
राज्यसभा सांसद
rkishore.sinha@sansad.nic.in

शिक्षा जैसे सवाल पर भी हमारे सभी राजनीतिक दल एक तरह से नहीं सोच पा रहे हैं. आपके पास जब किसी दल का नेता वोट मांगने आये, तो जरा पूछ लें कि शिक्षा के सवाल पर उसकी या उसकी पार्टी की क्या राय है?

लोकसभा चुनावों का प्रचार सारे देश में जोर पकड़ चुका है. हर पक्ष दूसरे पर जनता को छलने का आरोप लगा रहा है. ये सत्तासीन होने पर आसमान से सितारे तोड़ कर लाने के अलावा तमाम अन्य संभव-असंभव वादे भी कर रहे हैं. इन सबके बीच एक मुद्दा लगभग अछूता बना हुआ है- वह है शिक्षा. इतने महत्वपूर्ण बिंदु पर अभी तक कोई सारगर्भित बहस सुनने को नहीं मिल रही है. अगर हमारे देश में शिक्षा का स्तर नहीं सुधरेगा, तो देश बुलंदियों को कैसे छू सकेगा?

यह आश्चर्य का ही विषय है कि लोकसभा या विधानसभा चुनावों के दौरान शिक्षा के मसले पर कभी पर्याप्त बहस नहीं हो पाती. दरअसल, शिक्षा को राम भरोसे छोड़ दिया गया है. हमने अपने यहां स्कूली स्तर पर दो तरह की व्यवस्थाएं लागू कर रखी हैं. पहला प्राइवेट-पब्लिक स्कूल, दूसरा सरकारी स्कूल. पब्लिक स्कूलों में तो सब कुछ उत्तम-सा मिलेगा. वहां पर बेहतर इंफ्रास्ट्रचर के साथ-साथ सुशिक्षित शिक्षक भी उपलब्ध मिलेंगे. यदि बोर्ड की कक्षाओं को पढ़ानेवाले शिक्षकों का प्रदर्शन कमजोर रहता है, तो इन शिक्षकों से भी सवाल पूछे जाते हैं. साथ ही, इनकी कक्षाओं के छात्रों के बेहतरीन परिणाम आने पर इन्हें पुरस्कृत भी किया जाता है, लेकिन ऐसा लगता है कि ये बातें सरकारी स्कूलों पर लागू ही नहीं होतीं. वहां पर अध्यापकों की बड़ी पैमाने पर कमी होने के साथ-साथ जरूरी इंफ्रास्ट्रक्चर का भी नितांत अभाव है. इनमें बच्चों के लिए खेलों के मैदान तक नहीं हैं और अगर कहीं हैं भी, तो वे खराब स्थिति में हैं. इनमें पुस्तकालय और प्रयोगशालाएं आदि भी सांकेतिक रूप से ही चल रहे हैं.

आजादी के 70 साल बाद के लोकसभा चुनाव में भी शिक्षा के मुद्दे पर बहस का होना हमारी शिक्षा को लेकर पिलपिली राजनीतिक मानसिकता को ही दर्शाता है. हां, हम अपने को ज्ञान की देवी मां सरस्वती का अराधक अवश्य कह देते हैं. सरस्वती पूजा के दिन पंडाल लगा कर डिस्को डांस भी करवा देते हैं. आखिर बुनियादी मुद्दों पर कोई भी पार्टी बहस क्यों नहीं करती? सभी दल शिक्षा को लेकर अपनी भावी योजनाओं से देश के मतदाताओं को अवगत क्यों नहीं करा देते? उसके बाद भले ही जनता अपना फैसला सुना दे, पर अब तक के चुनाव प्रचार के दौरान यह सब देखने को नहीं मिला है.

शिक्षा के अधिकार कानून के तहत एक स्कूल में 35 बच्चों पर एक अध्यापक होना अनिवार्य है, पर नियमों को तो ताक पर रखा जा रहा है. कहीं-कहीं तो 220 बच्चों पर एक ही शिक्षक है और कहीं-कहीं तो पूरा-का-पूरा स्कूल ही एकाध शिक्षामित्र के सहारे चल रहा है. दिल्ली सरकार बड़े-बड़े दावे करती है कि उसने शिक्षा के क्षेत्र में क्रांतिकारी कदम उठाये हैं. दिल्ली सरकार की तरफ से यह तो बताया जाता है कि वह स्कूलों की इमारतों को सुंदर बना रही है, पर उसकी तरफ से इस तथ्य को छिपाया जाता है कि पिछले चार साल के दौरान दिल्ली के पांच लाख बच्चे सरकारी स्कूलों में फेल हुए हैं, जिनमें से चार लाख बच्चों को फिर स्कूलों ने दाखिला देने से इनकार भी कर दिया है. नौवीं में जो बच्चे फेल हुए, उनमें से 52 फीसदी को फिर दाखिला नहीं मिला. क्या आप यकीन करेंगे कि दिल्ली में 1,028 स्कूलों में से 800 स्कूलों में प्रिंसिपल नहीं हैं और 27 हजार से ज्यादा शिक्षकों के पद खाली पड़े हुए हैं?

आप मानेंगे कि शिक्षा क्षेत्र में आकर कुछ बेहतर करने को लेकर हमारी नयी पीढ़ी तो कभी उत्साहित नहीं होती. अब मेधावी नौजवान शिक्षक बनने के लिए तो तैयार ही नहीं हैं. यह सोचना होगा कि शिक्षक बनने को लेकर इस तरह का भाव नौजवानों में क्यों पैदा हो गया है? यह भी संभव है कि नौजवानों को लगता हो कि शिक्षक के रूप में अब करियर फायदे का सौदा नहीं रह गया. इसमें अस्थिरता बहुत है.

अब जरा दिल्ली विश्वविद्यालय के 77 कॉलेजों की बात कर लेते हैं. आपको यकीन नहीं होगा कि इनमें लगभग चार हजार शिक्षक तदर्थ (एडहॉक) शिक्षक के रूप में ही पढ़ाते हैं. देश के इतने महत्वपूर्ण विश्वविद्यालय में भी पिछले कई सालों से शिक्षकों की स्थायी नियुक्ति नहीं हुई है. इसलिए विश्वविद्यालय प्रशासन ने बड़े पैमाने पर तदर्थ शिक्षकों की बहाली कर रखी है, ताकि कॉलेजों में शिक्षण का कार्य सुचारू रूप से चल सके. इस प्रक्रिया में भ्रष्टाचार की शिकायतें भी मिल रही हैं. दरअसल, यह दुर्भाग्यपूर्ण हालात सभी जगहों पर ही देखी जा सकती है. ये तदर्थ अध्यापक हर दिन शोषण, मानसिक यंत्रणा, ज्यादा काम और असुरक्षा के वातावरण में नौकरी करते हैं. वास्तव में, हमें कभी-कभी बेहद निराशा होती है कि हम शिक्षा जैसे महत्वपूर्ण विषय को लेकर कितना गैर-जिम्मेदराना रवैया अपनाये हुए हैं. शिक्षा जैसे सवाल पर भी हमारे सभी राजनीतिक दल एक तरह से नहीं सोच पा रहे हैं. इस लिहाज से उत्तर भारत के राज्यों की स्थिति वास्तव में खासी दयनीय है. कुछ दिन पहले हरियाणा से एक खबर आयी कि दसवीं और बारहवीं की परीक्षाओं में जम कर नकल हुई. दसवीं की हिंदी की परीक्षा में नकल के 346 मामले दर्ज किये गये. बताइए, हरियाणा जैसे विकसित राज्य में हम नकल पर काबू नहीं कर पा रहे हैं. बहरहाल, आपके पास जब किसी दल का नेता वोट मांगने आये, तो जरा पूछ लें कि शिक्षा के सवाल पर उसकी या उसकी पार्टी की क्या राय है?

बोधि वृक्ष

परमपद

आत्मज्ञान ही एक मात्र ज्ञान है. मानसिक आध्यात्मिक अग्रगति का लक्ष्य हुआ सत्यम् और वह है ज्ञानम् अनंतम्. 'सत्' शब्द से सत्य शब्द आया है, अर्थात जो है और रहेगा उसके स्वीकृत रूप को कहते हैं सत्य. यह सीमा के भीतर भी काम कर सकता है और बाहर भी काम कर सकता है. इसलिए यह व्यक्त और अव्यक्त दोनों जगत् में एक योगसूत्र का काम कर सकता है. इस सत्य की सहायता से ही मनुष्य अपने लक्ष्य तक पहुंच सकता है. ज्ञान प्रक्रिया को सामान्य भाषा में कहा जाता है कर्मभाव का कर्तृभाव में रूपांतरण. अब जो कुछ भीतर या बाहर है, उस सत्ता को मन विषय में परिणत करके उसका किसी प्रकार आत्मस्थीकरण कर सकने को ही कहा जायेगा पराज्ञान. इसलिए परम लक्ष्य में पहुंचने के लिए केवल सत्य ही नहीं, इस आत्मस्थीकरण का भी प्रयोजन है. अब द्वितीय उपाय अर्थात कर्म के प्रसंग को लें. क्योंकि कर्म जो करेगा, वह तो पाशयुक्त जीव है. कर्म के द्वारा जब साधक की बंधन मुक्ति होगी, तब कर्म को भी अवश्य ही गुण प्रभावमुक्त होना होगा. क्योंकि मानसिक क्षेत्र में बहुत प्रकार के बंधन काम करते हैं. अतः मन को बंधन के बाहर ले जाने के लिए उसे किसी ईश्वरीय सत्ता के साथ संपर्कित होना होगा. प्रश्न है कि केवल कर्म से मनुष्य कैसे परमपद को पा सकता है? मान लो, मेरी दायीं ओर एक पुस्तक है; पुस्तक को हटा कर बायीं ओर रखा. पुस्तक का स्थानांतरण हुआ; एक कर्म निष्पन्न हुआ. यह जो क्रिया है, काल और स्थान के परिवर्तन के साथ-साथ वह भी बदल जाती है. अतः इस प्रकार के कर्म-संपादन के द्वारा मनुष्य चरम आध्यात्मिक अवस्था या जीवन के अंतिम लक्ष्य में नहीं पहुंच सकता है. शास्त्र में कहा गया है- कर्म ही ब्रह्म है और इसलिए अधिक से अधिकतर कर्म का अनुष्ठान करो. अब कर्म का अर्थ है वस्तु का स्थान परिवर्तन और स्थान है एक आपेक्षिक सत्ता. अब तृतीय उपाय के संबंध में चर्चा करें. तृतीय उपाय हुआ भक्ति. भक्ति योग शुरू होता है मानस स्तर से, किंतु उसका लक्ष्य रहता है मानस परिधि के बाहर.

श्रीश्री आनंदमूर्ति

आपके पत्र

अंपायरों ने किया निराश

आइपीएल के मौजूदा सत्र में अंपायरों ने अपनी अंपायरिंग से काफी निराश किया है. हम सब जानते हैं कि आइपीएल भारत का पेशेवर टी-20 लीग है. भारत के साथ-साथ अन्य देशों में इसे काफी उत्साह और रोमांच के साथ देखा जाता है. ऐसे में अंपायरों को चाहिए कि वे गंभीरता से सोच-समझ कर अपना निर्णय दें, क्योंकि उनके एक निर्णय में खेल का सीधा एक पक्ष से दूसरे पक्ष में जाने की संभावना होती है. पिछले मैचों में इसके कई उदाहरण हैं, जिनमें चेन्नई और राजस्थान का एक मैच था, जिसमें मुख्य अंपायर द्वारा बेन स्टॉक्स के अंतिम ओवर के एक बॉल को नो बॉल दिया गया, परंतु लेग अंपायर के द्वारा उसे फिर नकारा गया, जबकि नियनानुसार ऐसे में उन्हें तीसरे अंपायर के पास जाना चाहिए था. इससे पहले भी मुंबई और बेंगलुरु के एक मैच में अंतिम गेंद नो बॉल होने के बावजूद उसे नो बॉल नहीं दिया गया.

शुभम गुप्ता, धनबाद

इवीएम पर हंगामा बेमानी

चुनाव आते ही इवीएम पर अंतहीन तकरार शुरू हो चुकी है, जो इनके नतीजे आने के बाद तो पूरे उबाल पर रहेगी. जो भी पार्टी हारेगी, ठीकरा इवीएम पर फोड़ेगी. यह सब तब है, जब प्रत्याशी और दल इवीएम से चुनाव कराने को सहमति दे चुके हैं. अनेक अवसरों पर निर्वाचन आयोग ने इवीएम हैक किये जाने की प्रक्रिया प्रस्तुत करने की चुनौती दी हैं, किन्तु आरोप लगाने वाला कोई भी योद्धा इसे स्वीकार नहीं कर सका है. ऐसा नहीं है कि मतदान में गड़बड़ी के आरोप इवीएम आने के बाद लगे हैं. बैलेट से चुनाव होने पर भी गड़बड़ियों के आरोप सत्ताधारी दल पर लगते रहे हैं. भारत में जितने चुनाव-सुधार हुए हैं, उतने कहीं भी नहीं हुए. पूर्व मुख्य चुनाव आयुक्त टीएन शेषन ने अपने कार्यकाल में विभिन्न चरणों में चुनाव कराके बूथ कैप्चरिंग और चुनावी हिंसा पर लगाम लगायी थी, तब भी अनेक दलों और नेताओं के पेट में मरोड़ उठे थे.

सतप्रकाश सनोठिया, रोहिणी

छात्र राजनीति से दूर क्यों रहें

दिल्ली विश्वविद्यालय के रामजस कॉलेज एक बार फिर चर्चा में है. प्रिंसिपल मनोज खन्ना जी छात्रों को नसीहत दे रहे हैं की वार्षिक पत्रिका 'आनंद पर्वत' में छात्रों को किस विषय पर लिखना है और किस पर नहीं लिखना है. मजेदार बात यह है कि वही लिखने का विषय भी सुझा रहे हैं. विश्व अर्थशास्त्र, पर्यावरण, विज्ञान एवं समाज पर लिखने को कहा जा रहा है. राजनीति से दूर रहने का फरमान सुनाया गया है. इसके लिए तर्क दिया जा रहा है कि कॉलेज परिसर को गंदी राजनीति से दूर रखना है. अगर राजनीति से ही परहेज जरूरी है, तो फिर छात्र संघ का चुनाव क्यों करवाया जाता है? हमें कैसा विकास चाहिए, कैसी नौकरी चाहिए, देश का व्यापार कैसे होगा, सड़क कब बनेगी और कितनी लंबी-चौड़ी बनेगी, बिजली बिल की दर कितनी होगी, यह सब तय करने का अधिकार जब राजनीतिज्ञों के पास है, तो फिर विद्यार्थियों से क्यों कहा जा रहा है?

जंग बहादुर सिंह, गोलपहाड़ी, जमशेदपुर

कुछ अलग

गणित के सवाल में जेंडर का प्रश्न

सन्नी कुमार
टिप्पणीकार
sunnyand65@gmail.com

गणित में सवाल आता है- किसी काम को 5 पुरुष 10 दिनों में तथा 5 महिलाएं 15 दिनों में कर सकती हैं, तो 2 पुरुष और 3 महिलाएं इसे कितने दिनों में पूरा करेंगे? ऐसे सवाल आपने खूब हल किये होंगे. गणित के लिहाज से इस सवाल में कुछ भी अस्वाभाविक नहीं है और अधिकतर लोग इस सवाल को आसानी से हल भी कर लेंगे. लेकिन जेंडर के हिसाब से इस सवाल की संरचना दोषपूर्ण है तथा इसे हल करने का प्रयास गिने-चुने लोग ही करते हैं. अगर एकाध अपवाद को छोड़ दें, तो सवाल की संरचना इसके विपरीत क्यों नहीं होती? अर्थात महिलाओं द्वारा कम समय में काम समाप्त कर देने और पुरुषों के लिए उसी काम को पूरा करने में अधिक समय लगने की बात सवाल में क्यों नहीं होती? इस पर विचार कर ही हम गणित के सवाल का जेंडर हल खोज सकते हैं.

दरअसल, यह उस मानसिक अवस्था का भाषायी रूपांतरण है, जिसमें महिलाओं को पुरुषों से 'कमजोर' माना जाता है और जिसमें आश्चर्यजनक स्वीकार्यता होती है कि पुरुष किसी काम को महिलाओं की अपेक्षा कम समय में कर सकते हैं. इस दूषित धारणा को स्वीकार लेने के चलन से स्वाभाविक रूप से यह भाव भाषा में रूपांतरित हो जायेगा. इसलिए ही गणित के कल्पनामूलक सवाल में भी पुरुष जल्दी कार्य समाप्त कर लेते हैं और महिलाएं देरी से. इस विभेदीकारी सोच की परत इतनी स्थायी हो चुकी है कि हम इस पर विचार तक नहीं करते.

कुछ अपवादों को छोड़ दें, जहां पुरुष अपने शारीरिक गठन के कारण अधिक कुशलता से कार्य करते हों, तो सामान्यतया महिला-पुरुष की कार्य-दक्षता में अंतर नहीं होता. ऐसे अपवाद केवल कुछ 'शारीरिक श्रम' के संबंध में ही हो सकते हैं, जबकि यह स्वरूप निरंतर कम हो रहा है. इसके अलावा श्रम के विविध क्षेत्रों में यह अंतर नहीं होता.

क्या पुरुष ट्रैक्टर चालक के पास कोई खास योग्यता होती है कि वह महिला चालक की अपेक्षा खेत की जुताई जल्दी और अधिक दक्षता से कर दे? या फिर पुरुष अधिकारी महिलाओं से उच्चतर बौद्धिक कौशल धारण करता है? अगर इन सवालों के जवाब न में हैं, तो फिर गणित के सवाल निर्माण में इस बुनियादी तर्कसंगतता का इस्तेमाल क्यों नहीं होता? सीधा सा जवाब है कि समानता के सिद्धांत में प्रति हामी भरने के बावजूद हमारा समाज उसको व्यावहारिक रूप से लागू नहीं करना चाहता.

यह अनायास नहीं है कि फिल्मों में समान काम के लिए पुरुष एक्टर और महिला एक्टर के वेतन में जमीन-आसमान का अंतर होता है. ऐसे कई उदाहरण हैं. यह एक दुखद अवस्था है जिसे यथाशीघ्र बदलना चाहिए, पर हम इसे और मजबूत कर रहे हैं. जो बच्चे महिला-पुरुष के बीच कृत्रिम विभाजन को रचनेवाली भाषा के आदी हो जायेंगे, उन्हें बाद में समानता की सैद्धांतिकी कितनी आकर्षित कर पायेगी! कार्य क्षमता सभी में बराबर नहीं होती, पर इस अंतर का आधार महिला और पुरुष नहीं होता. इसलिए, ऐसी हर अवैध मान्यता को प्रश्नगत किया जाना चाहिए, ताकि समतामूलक समाज निर्मित हो सके.

देश दुनिया से

चीन-अमेरिका व्यापार युद्ध का प्रभाव

अमेरिका में अभी से 2020 का राष्ट्रपति चुनाव अभियान शुरू हो गया है. संभवतः अमेरिका-चीन व्यापार युद्ध इस चुनाव के केंद्रीय मुद्दों में से एक होगा. भूराजनीतिक पर्यवेक्षक लंबे समय से इस महत्वपूर्ण सत्ता संक्रमण को देख रहे हैं. अब दुनिया इसकी गवाह बनेगी कि अमेरिका के घरेलू सत्ता संघर्ष और दलीय राजनीति के हिस्से के तौर पर यह किस तरह आगे बढ़ता है. यह सवाल गंभीर है, खासकर जापान जैसे देश के लिए, जो इन दो वैश्विक शक्तियों के बीच रहता है. अमेरिका-चीन व्यापार युद्ध के मूल कारकों की ओर ध्यान दिया जाना ज्यादा जरूरी है. सरकार के साथ-साथ शी जिनपिंग की व्यक्तिगत शक्ति सुनिश्चित करने के लिए, चीन को दो तरह की चुनौतियों का सामना करना पड़ता है. आर्थिक विकास दर किस तरह बनाये रखा जाये और शी के प्रतिद्वंद्वियों को किस तरह सत्ता से बाहर रखा जाए. चीनी अर्थव्यवस्था पर लंबे समय से मंडरा रहे संकट को देखते हुए बीजिंग इस व्यापार युद्ध को अनिश्चित काल के लिए नहीं खींच सकता है. वहीं, ट्रंप प्रशासन नाटो और पूर्वी एशिया के अपने सहयोगियों को चेतावनी दे रहे हैं कि अमेरिका के रक्षा आश्वासन बिना पैसों के नहीं आती है. ऐसी धारणा रूस और चीन को फायदा पहुंचाती है.

लल्ली मिउरा

कार्टून कोना

साभार : कार्टूनमूवमेंटडॉटकॉम

पोस्ट करें : प्रभात खबर, 15 पी, इंडस्ट्रियल एरिया, कोकर, रांची 834001, **फैक्स करें** : 0651-2544006,
मेल करें : eletter@prabhatkhabar.in पर ई-मेल संक्षिप्त व हिंदी में हो. लिपि रोमन भी हो सकती है